IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

श्री नरेश मेहता के खण्ड -काव्यों में भारतीय संस्कृति

डॉ. सरूप रानी

अस्सिटेंट प्रोफेसर

हिंदी विभाग

संत हरि सिंह मेमोरियल

कॉलेज फॉर विमेन चेला-मखसूसपुर,

होशियारपुर , पंजाब।

मानव जीवन की संपूर्ण गतिविधियों का संचालन इतिहास, परम्परा और संस्कृति के द्वारा होता है। मानव की श्रेष्ठ साधनाओं की सबसे सुंदर परिणति को ही संस्कृति के नाम से अभिहित किया जाता है।इसमें मानव जीवन की विशिष्ट पद्धति तथा विकास की दिशा में सतत् गतिशील,किंतु तटस्थ जीवन –व्यवस्था है। संस्कृति ‘ शब्द बहुत अधिक प्रचलित होते हुए भी विद्वान इसे एक सही परिभाषा देने में असमर्थ रहे हैं,इसकी अभी तक कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं बन सकी है।

संस्कृति का अर्थ:- संस्कृति शब्द ‘ सम् ‘ उपसर्ग तथा ‘ कृ’ धातु के योग से निष्पन्न ‘ संस्क्रिया’ , ‘ संस्कार ‘ तथा ‘ संस्कृत ‘ शब्द भी उपलब्ध होते हैं। ‘ संस्क्रिया’ से तात्पर्य शुद्धि अथवा परिष्कार की क्रिया है।१

संस्कृति की परिभाषा:- संस्कृति को विभिन्न विद्वानों ने अपने – अपनेढंग से परिभाषाबद्ध करने का प्रयत्न किया है।ये परिभाषाएं संख्या में अत्यधिक हैं और अपने केंद्रीभूत भाव में पृथक् – पृथक् किया है।ऐसी परस्थिति में संस्कृति की सर्वमान्य परिभाषा देना यदि असंभव नहीं,तो कठिन अवश्य है ।

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार, “ संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा हो कर उस समाज में छाया रहता है,जिसमें हम जन्म लेते है।२

देवराज के शब्दों में, " संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सृजन की वे क्रियाएं समझनी चाहिए,जो मानव – व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी न होते हुए भी समृद्ध बनाने वाली है।३

कलानाथ शास्त्री के विचार में, "संस्कृति वह सामाजिक मूल्य – बोध है,जो एक देश, राष्ट्र या वर्ग को एक समान सूत्र में बांधता है, स्वाभिमान का अमृत पिलाता है और आत्मबोध कराता है।४

संस्कृति समाज में रहकर मनुष्य द्वारा अर्जित की गई वह विकासोन्मुखी प्रक्रिया है,जो दर्शन, धर्म, नैतिकता, सौंदर्य एवं संबंध योजना के माध्यम से मनुष्य के आचार – विचार को अधोगति से सद्गति की ओर प्रेरित करती है तथा उन जीवन – मूल्यों की स्थापना करती है,जो देशगत होते हुए भी सार्वभौम होते हैं।

संस्कृति का स्वरुप:- मानवता से है। मानवता से तात्पर्य वे मानवीय गुण,जो मनुष्य को पशु से अलग करते हैं।अपनी मूल प्रवृत्तियों की तुष्टि के आधार पर मनुष्य तथा पशु में कोई भी मूलभूत अंतर नहीं है।जब मनुष्यता पाशविकता से संघर्ष करके अपना अस्तित्व प्रकाश में लाती है,तो यह क्रिया संस्कृति कहलाती है। अतः यह प्रक्रिया भौतिक न होकर आंतरिक है। हजारी एकरीतिरसाद द्विवेदी के शब्दों **में,** "नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा, भक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान् सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है,किसे हम ' संस्कृति ' शब्द द्वारा करते हैं।५

मेहता प्रकृति, भारतीय संस्कृति, सभ्यता और भाषा से गहरा प्रेम रखते हैं।इस प्रेम की बदौलत ही भारतीय संस्कृति की सतरंगी छटा उनके काव्य में बिखरी पड़ी है। रामकमल राय के शब्दों में, "भारतीय संस्कृति के मूल उद्गम को ढूंढने, उसमें बीच – बीच में आई विकृतियों और दोषों को पहचानने और उनसे बचने के साथ – साथ संस्कृति के उद्घतिकरण का जो एक विराट कवि सुलभ प्रयास किया है,वह हर दृष्टि से शालघनीय है।६

श्री नरेश मेहता के खण्ड – काव्य भारतीय संस्कृति से सराबोर हैं। भारतीय संस्कृति की अनुपम छटाएवम् अर्थपूर्ण भाव इन काव्य खंडों में देखने को मिलते हैं। पुराणों से उठाए गए प्रसंगों को आधुनिक संदर्भ प्रदान करना कवि की विशेष उपलब्धि है।नरेश के खण्ड – काव्य भारतीय संस्कृति के संदर्भ में निम्नलिखित है:-

महाप्रस्थान:- ' महाप्रस्थान ' पौराणिक पृष्ठभूमि पर समकालीन बोध की समस्याओं को उजागर करता खण्ड – काव्य है। ' महाप्रस्थान ' महाभारत का एक अंग होने के साथ – साथ उसकी समस्याओं को दृष्टिपात करता है।यह काव्य अनंत प्रश्नों से हमें बिद्ध कर हमारे आधुनिक, रूंधे औंधे व्यक्तित्व को उलट कर खड़ा कर देता है।इसीलिए यह आधुनिकता पीड़ित चेतना के भीतर से उपजा हुआ जागृत अंतरानुभव की कविता है।' महाप्रस्थान ' प्रज्ञा की प्रतिष्ठा करता हुआ भी कविता है, अकविता नहीं।७

' महाप्रस्थान ' में गांधीवादी चेतना एवम् मानवता प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है।

' महाप्रस्थान ' में युधिष्ठिर मानव की रक्षा करते हुए कहते हैं:-

भीम/मैं राज्यान्वेशी नहीं

मूल्यांवेशी रहा हूं/राज्य जैसी अपदार्थता के लिए/...

सौ वर्षों के बनवास के बाद भी

कौरव हमें अपना अधिकार दे देंगे/तो सच मानो भीम

मैं युद्ध के लिए सहमत नहीं होता।(समिधा – २, पृष्ठ ३१६)

‘ महाप्रस्थान ‘ को हम मानव की विकास यात्रा के रूप में देख सकते हैं। मानव की आस्था अहिंसा के प्रति है, हिंसा के प्रति नहीं। युधिष्ठिर अर्जुन से कहते हैं:-

युद्धों, प्रतिहिंसाओं के दावानल में

न कृष्ण,न पार्थ,न तुम,न मैं

कोई भी सुरक्षित नहीं रह सकता।(समिधा – २, पृष्ठ २९८)

नीतियां धर्म पर आधारित होती हैं,भारतीय संस्कृति को मानने वाले धर्म को छोड़ नहीं सकते। युधिष्ठिर करूणा को विशिष्ट मूल्य स्वीकार करते है:-

करुणा मेरा धर्म है भीम!/किसी भी संबंध

साम्राज्य शक्ति के सामने/ मैं इसे नहीं छोड़ सकता

विश्वास करो/ धर्म के मूल्य पर

मैं स्वर्ग को अस्वीकार का सकता हूं भीम।(समिधा – २, पृष्ठ ३१७- ३१८)

पश्चिमी सभ्यता का भारतीय मूल्यों को बदलने में बहुत बड़ा हाथ रहा है। पश्चिमी सभ्यता से अभिव्यक्ति पाकर जो नए मूल्य बने,उन्होंने अंधविश्वास का तिरस्कार किया आर्द्रम निरपेक्षता की अभिव्यक्ति की।श्री नरेश मेहता ने ‘ महाप्रस्थान ‘ में ऐसे मानव का वर्णन किया है जो धर्म विचारों से हटकर राज्य व्यवस्था और युद्ध नियति में गिरफ्ताई। युधिष्ठिर कहते हैं:-

राज्य के नहीं/धर्म के नियमों पर समाज आधारित है

राज्य पर अंकुश बनाए रखने के लिए/धर्म ओर विचार को

स्वतंत्र रहने दो पार्थ।(समिधा – २, पृष्ठ ३२६)

विजय के सामने मूल्यों का कोई महत्व नहीं होता। आजीवन धर्म का पालन करने वाले युधिष्ठिर को भी अंत में असत्य का आश्रय लेना पड़ा था।सामाजिक जीवन में मूल्य एवं मानवीय उदात्तताएं कोई महत्व नहीं रखती, झूठ ही सर्वोपरि होता है। झूठ की विजय के लिये अधिक झूठ बोला जाता है ओर चरम झूठ में मानवता एवं मूल्य बलि वेदी पर चढ़ते हैं:-

आहत अश्वत्थामा...नर या कुंजर/मूल्य और मानवी उदात्तताएं

जब सार्वजनिक जीवन में /हो जाती है शेष/तभी होता है युद्ध/...

विजय के सम्मुख

मूल्यावन्ता का क्या है अर्थ ?(समिधा – २, पृष्ठ २७२)

जीवन में कई बार मानव को ऐसे कार्य करने पड़ते हैं जो वह नहीं करना चाहता।‘ महाप्रस्थान ‘ में युद्ध भी युधिष्ठिर के लिए तात्कालिक आवश्यकता है और किया गया कार्य कर्म के अधीन है:-

एक तात्कालिक धर्म भी होता है -/ कर्तव्य!!

जब युद्ध कर्तव्य हो गया तो अनासक्त होकर/वह भी किया

इसीलिए उन दिनों की स्मृतियां

मुझे भी स्मरण हो जाता हैं।(समिधा – २, पृष्ठ ३१८)

देवत्व को प्राप्त करने के लिए मानव को भेद – भाव, मोह – ममता, सुख – दुख केआ आवरण हटाना पड़ता है। मानव सांसारिक बंधनों को त्याग कर मानव से देव बनता है, सांसारिक बंधनों से मुक्ति ही देवत्व की प्राप्ति है युधिष्ठिर इसी त्याग की वार्ता द्रौपदी से करते हैं:-

सारे वर्णगंध/जब मन पर से उतर जाते हैं।

तब अन्तर के देवात्मा हिमालय की

श्वेत देव भूमि जागृत होती है कृष्णा।/निर्भय होना ही हिमालय होना है

ओर अनासक्ति ही स्वर्ग है।

हिमालय ही आत्मा है।(समिधा – २, पृष्ठ ३०३)

नरेश मेहता विश्वसनीयता पर बल देते हैं,विश्वास ही जीवन है।जो मानव अपने ऊपर विश्वास नहीं कर सकता उसके लिए दुनिया की सारी चीजें निरर्थक है। ‘ महाप्रस्थान ‘ में कवि ने नारी के विश्वास ओर अविश्वास की बात की है। द्रौपदी पार्थ से कहती है कि राम ने सीता पर विश्वास नहीं किया ,उसकी परीक्षा ली।बदले में उसे क्या मिला? वहीं इतिहास तुम मेरे साथ दोहरा रहे हो यह हम परीक्षा लेकर। परीक्षा लेने से नारी विश्वास एवं अविश्वास के बीच कट जाती है :-

सीता की अग्नि परीक्षा से/राम को क्या प्राप्त हुआ?

जो तुम /अपनी कृष्णा की हिम परीक्षा ले रहे हो?

पार्थ/प्रत्येक ऐसी परीक्षा/पत्नी के लिए अविश्वास ही है।

और ऐसी परीक्षा के बाद

नारी पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है।(समिधा – २, पृष्ठ ३०५- ३०६)

धर्म मनुष्य ओर ईश्वर के संबंध को स्थापित करता है।आधुनिक बोध के साथ श्री नरेश ने धर्म के महत्व को स्वीकार किया है। युधिष्ठिर धर्म पथ पर प्रकृति का रहस्य पाना चाहता है:-

कोई शास्त्र नहीं पार्थ/जो प्रकृति के धर्म का भेदन कर सके

प्रकृति के धर्म का भेदन करना/परात्पर होना है।

और वह शास्त्र से संभव नहीं।(समिधा – २, पृष्ठ ३२१)

युधिष्ठिर अपना धर्म ओर कर्म जानते हैं।वे धर्म के मूल्य को स्वीकार करते हुए कहते हैं:-

धर्म के मूल्य पर

मै स्वर्ग को भी अस्वीकार कर सकता हूं भीम।(समिधा – २, पृष्ठ ३१८)

स्वर्ग द्वार पर पहुंचने से पहले द्रौपदी हिम में धस जाती है तब भीम युधिष्ठिर से प्रश्न करता है कि द्रौपदी हिम में क्यों धंसी ? तब उसके उत्तर में युधिष्ठिर बताता हुआ कि द्रौपदी का खंडित व्यक्तित्व था।इस व्यक्तित्व को धर्म स्वीकार नहीं करता।धर्म ऐसे व्यक्तित्व को वैसे ही अस्वीकार कर देता है,जैसे सागर किसी शव को। द्रौपदी के धर्म परायण न होने के कारण ही वह हिमालय में धस गई:-

क्योंकि वह संस्कारितकता थी/पत्नी वह सबकी थी भीम

किंतु वह मनसा/प्रिया अकेले पार्थ किन्हीं रही

विभाजित व्यक्तित्व/वह किसी का भी हो

धर्म नहीं स्वीकार किया करता भीम। धर्म की प्रकृति है ।

इसलिए सागर की भांति /शव नहीं स्वीकार किया जाता।(समिधा २, पृष्ठ ३१४)

संशय की एक रात:- ‘ संशय की एक रात’ खंड काव्य राम कथा पर आधारित है।रचना के आधार ‘ विशेष क्षण ‘ है।इस विशेष क्षण के केंद्र बिंदु है- संशय ओर संघर्ष।नरेश आंतरिक संशय के साथ बाहरी संघर्ष को प्रस्तुत किया है।इस खंड काव्य की पृष्ठभूमि अवश्य पुरातन है लेकिन संदर्भ आधुनिक है।राम आधुनिक मानव की तरह समस्याओं से जूझता है और संशय जैसी कुप्रस्थिति में पड़ जाता है। नरेश ने क्षण के महत्व को बार – बार स्वीकार किया है।इस संदर्भ यह पंक्तियां दृष्टव्य है:-

वह तो क्षण था/गुण था/जो कि हैं, रहेगा भी।

केवल हम ही उस क्षण के पूर्व तक उसमे नहीं थे

केवल हम ही/उस क्षण के बाद नहीं होते।(समिधा – २, पृष्ठ २३१)

मेहता गतिशीलता पर बल देते हैं।चलते रहने से ही कीर्ति तथा तीर्थ मिलते हैं और यह चलना मात्र बाहरी नहीं आंतरिक ब होता है:-

हम केवल चलते हैं/अपने में/अपने से बाहर

धूप और अन्धकार चीरे/हम चलते है

चलने पर/संभव है – /तीर्थ मिले

कीर्ति मिले

चामर की छांह मिले/सम्भव है –

पसली में वाण फंसे

प्यासे ही दम तोड़े।(समिधा – २, पृष्ठ १९९)

संस्कृति के बदलते मूल्यों में मानवतावाद का उदय हुआ। इस खण्ड – काव्य में लक्ष्मण की दृष्टि में मानव की सार्थकता उसके कर्म में है, “शंकाओं ओर संशयों के घटाटोप से राम को निकालकर हनुमान और लक्ष्मण कर्म का समर्थन करते हैं। वास्तव में कर्म मानव जीवन की वर्णय है उच्चतम मूल्य है।८

लक्ष्मण के इस कथन में कवि कर्म की अटूट आस्था प्रकट करता है:-

कितने ही लघु हो/इससे क्या? सार्थक है।

स्वत्व है हमारा कर्म।(समिधा – २, पृष्ठ १९८)

जो मनुष्य अपने कर्म एवं वचनों पर अडिग रहते हैं वह कभी विचलित नहीं होते।मानव को अपने कर्म पर विश्वास रखना चाहिए:-

किंतु /किंतु यह असंभव है

बंधु!यह असंभव है

कर्म ओर वर्चस को/ छीन सके कोई भी

जब तक हम जीवित है।(समिधा – २, पृष्ठ २००)

लक्ष्मण को राम को माथे पर चिंता की रेखाएं स्वीकार नहीं हैं। वरन् यह तो युद्ध को अपना कर्तव्य समझ अपना कर्म करना चाहते है:-

लंका यदि ध्रुव पर भी होती तो/भाग नहीं पाती!

कर्म की चुनौती मुझे स्वीकार है/अग्निकुंड की माथे पर

राम के माथे पर

चिंता की रेखा देख नहीं सकता।(समिधा – २, पृष्ठ २०१)

संशय की एक रात ' में नरेश ने अहिंसा को प्रतिपादित किया है।राम युद्ध नहीं चाहते,वे अहिंसा द्वारा सीता को प्राप्त करना चाहते हैं।राम अपने अहिंसावादी विचारों को प्रकट करते हुए कहते है:-

तो/ लो समर्पित है तुम्हें

तुम्हारे अज्ञात बलों को

इस क्षण के द्वारा

दृष्टि भीगे उस महाकाल की/समर्पित है यह

धनुष, बाण, खड्ग और शिरस्त्राण/मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए

मानव के रक्त पर पग धरती/सीता भी नहीं चाहिए।(समिधा – २, पृष्ठ २१२)

सत्य जब मानवता से जुड़ जाता है तब वह मानव के लिए समर्पित सत्य कहलाता है।सत्य की प्रतिष्ठा करते हुए राम कहते हैं:-

मैं सत्य चाहता हूं/युद्ध से नहीं

खड्ग से भी नहीं

मानव का मानव से सत्य चाहता हूं/क्या ये संभव है?/क्या यह नहीं है।(समिधा – २, पृष्ठ २११)

शबरी:- ' शबरी' खंड – काव्य में मिथकीय बोध एवं आधुनिक बोध पाया जाता है। वर्ण – विषमता को आधार बनाकर दलित नारी की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न किया है। शबरी अपनी तपस्या एवम् भक्ति से वर्ण के बंधनों को तोड़ती है। कवि की पंक्तियां जिसमें शबरी को अभूतपूर्व गौरव प्राप्त हुआ है:-

उपवन – आश्रम के सारे/ये फूल सुगंधित उससे

थी वह पवित्रता ऐसी/होती पवित्रता जिससे (समिधा – २, पृष्ठ ४१९)

भारतीय जन मानस में प्राचीन काल से यह धारणा रही है कि, “प्रेम और भक्ति के आलोक में अस्पृश्यता पुनीत आनंदमयी ही जाती है किंतु उसका युगीन परिप्रेक्ष्य गांधीवादी जीवन दर्शन ने ही जगमगाता है।९ गांधीवादी विचारधारा के फलस्वरूप ही दलित वर्ग को सम्मान की नजर से देखा जाने लगा। शबरी खंड – काव्य में शबरी हिंसा से घृणा करती है।उसे अपनी जाति की हिंसा, लूटपाट, हत्याएं अनुचित लगती हैं।चारों ओर का वातावरण उसके लिए असहय है:-

यह देख – देख शबरी को/जाने कैसा – सा लगता

कटते पशुओं का कंपना/उसको अपने में दिखता।(समिधा – २, पृष्ठ ४९२)

शबरी अपनी जाति के सामाजिक बंधन तोड़कर सेवा भाव से संतुष्ट हैं। वह मतंग ऋषि से कहती है:-

मैं चाह रही केवल प्रभु को/ श्री चरणों की सेवा करना/

मै कर लूंगी संतोष मिले/यदि गायों की सेवा करना।(समिधा – २, पृष्ठ ४८७)

शबरी प्रभु सेवा को ही अपना धर्म समझती है वह कहती है:-

बोली, प्रभु दर्शन से मेरा/ जीवन आज कृतार्थ हुआ/

मै शबर जाती की श्यामा हूं/प्रभु सेवा मेरा इष्ट हुआ।(समिधा – २, पृष्ठ ४८७)

‘ शबरी’ खंड – काव्य में नरेश ने उन प्रतीकों को अपना काव्य विषय बनाया जो समाज की उपेक्षा का कारण बनते रहे हैं।‘ शबरी ‘ के माध्यम से कवि यह प्रकट करने का प्रयत्न कर रहा है कि अगर मानव का हृदय अच्छा हो, साफ़ हो तो उसे सारा जगत ही सुंदर दिखाई देता है:-

जो ज्ञान – भक्ति का साधन /ऋषियों का भी आराधक

वह मर्यादा – नियमों का/कैसे हो सकता बाधक।(समिधा – २, पृष्ठ ५१७)

शबरी तपस्या की वह पर प्रचंड अग्नि है जिससे संपूर्ण मानवता कृतार्थ होती हैं:-

शबरी अंत्यज है तो क्या/वह शक्ति रूप है शूद्रा।(समिधा – २, पृष्ठ ५१८)

शबरी सामाजिक बंधनों से लड़ती पावन एवं पवित्र हो गई है, “ सामाजिक मूढता, परिवेशगत जड़ता तथा अपने युग के साथ संलापहीनता की स्थिति में केवल अपने को ही जागृत किया जा सकता है, व्यक्ति समाज बन सकता है। शबरी भी इसी भूमिका पर आत्मोत्थान करती हुई वर्ण – भक्त हो सकती है।वह आत्मिक संघर्ष करती हुई पवन और मंत्रयुक्त चरित्र बन गई है।१०

श्री नरेश मेहता का काव्य वैष्णव संस्कारों से ओतप्रोत है,उनकी भक्ति किन्हीं भक्तों या संतों की तरह की नहीं है बल्कि उनकी भक्ति में प्रार्थना भाव देखने को मिलता है। प्रभु आराधना को महत्व देते ही ए शबरी कहती है:-

अब बंधन से वही श्रेष्ठ है/उस प्रभु का ही बंधन

कुल – कुटुम्ब की चिंता से/अच्छा है प्रभु – आराधन ।(समिधा – २, पृष्ठ ४८२)

भक्ति भावों से अनुप्राणित खंड – काव्य ‘ शबरी ‘ में गुरु कृपा को व्यापक महत्व दिया है। शबरी के माध्यम से इसी तथ्य की अभिव्यंजना की गई है:-

प्रभु के श्रीमुख से प्रवचन सुन /यह भवसागर तर जाऊंगी,

पापी हूँ,गुरु की कृपा हुई/तो हरि गुण गा ते जाऊंगी।(समिधा – २, पृष्ठ ४८९)

श्री नरेश मेहता के खण्ड काव्य ‘ शबरी ‘ में नवधा भक्ति के अंतर्गत जो भाव आते है,उनका वर्णन देखिए:-

श्रवण भक्ति

प्राय: तो आते – आते सुनती/रहती वह प्रवचन

एकाग्र चित वह उस दिन/जब हो विशेष आयोजन।(समिधा – २, पृष्ठ ४९४)

कीर्तन

ठाकुर प्रतिमा के सम्मुख/तन्मय हो कीर्तन करती

प्राय: तो रातें उसकी/

प्राय: तो रातें उसकी/पूजा में बीता करती।(समिधा – २, पृष्ठ ४९५)

पाद सेवन

वह झुकी हुई थी प्रभु के/चरणों पर श्रद्धानत हो,

आंसू से भीग गए पग/श्रद्धा थी झुकी, विनत हो।(समिधा – २, पृष्ठ ५२२)

आत्म निवेदन

मैं पापी हूं, हूँ हतभागी/इस भवसागर को पार करो

प्रभु चरणों में हो भक्ति अटल/मुझको दासी स्वीकार करो(समिधा – २, पृष्ठ ४८९)

दास्य - भाव में सेवक भाव की प्रधानता होती है। लघुता एवं महानता के भाव की व्यंजना करते हुए शबरी कहती है:-

तेरी विशाल रचना में /मै घात – पात ही केवल

शबरी का तो है तू ही/आराध्य और बस तो बल।(समिधा – २, पृष्ठ ४९७)

मेहता ने ' शबरी ' में विरह वर्णन भी किया है। विरह व्यथा में शबरी कहती है:-

शबरी बोली तब प्रभु से/है मात्र निवेदन इतना

मैं सहन नहीं कर सकती/अब तो वियोग क्षण जितना।(समिधा – २, पृष्ठ ५२४)

प्रवाद पर्व:- खण्ड – काव्य ' प्रवाद पर्व ' आख्यान समकालीन बोध लिए हुए है।इस रचना में श्री नरेश मेहता निर्वेद की भूमि पर खड़े होकर सीता के त्याग,सीता के निर्वासन का निर्णय करते हैं।वे जानते हैं कि पद,मर्यादा और अधिकार मनुष्य को निर्भय नहीं बनाते और भययुक्त व्यक्ति निर्णय नहीं ले सकता।

श्री नरेश मेहता ने अपनी कई रचनाओं में सहिष्णुता की शक्ति की संयोजना की है। ' प्रवाद पर्व ' में सहिष्णुता को साधारणता से जोड़ा गया है। सहिष्णुता और सहिष्णुता की गम्भीर अर्थ छवियों को ये काव्य प्रसंग हमारे सामने रखता है:-

राम ! अपने को इतिहासहीन बना लेना/कहीं अधिक श्रेयस है/क्योंकि

जब भी/कोई अज्ञात कुलशील/अनाम/साधारणजन

किसी इतिहास पुरुष के विरुद्ध/तर्जनी उठाने का साहस करता है

तब वह मात्र विद्वेष ही नहीं होता है राम/न वह असहिष्णुता ही है

साधारणता की इतर सृष्टि में,/नहीं कोई सहिष्णुता नहीं।(समिधा – २, पृष्ठ ३६६)

' प्रवाद पर्व ' में कर्म के महत्व को स्वीकार करते हुए राम कहते हैं कि मनुष्य जैसे कर्म करता है वैसे ही फल भोगता है।कर्म के अधीन मनुष्य सब कुछ करता है,कर्म से यदि कोई भागना चाहे तो संभव नहीं है:-

कर्म के इस तटस्थ/भागवत अनुष्ठान से

कोई मुक्ति नहीं/कोई निष्कृति नहीं।(समिधा – २, पृष्ठ ३६०)

सत्य के मूल्य को सर्वोपरि मानते है।राम सत्य को सबसे बड़ा एवं उच्च मूल्य बताते हैं:-

इतिहास से भी बड़ा मूल्य है/ सत्य

परात्पर सत्य, ऋत -/और

यही तुम्हारी चरित्र – मर्यादा है/ ऋतम्भरा व्यक्तित्व है।(समिधा – २, पृष्ठ ३६८)

प्रार्थना पुरुष:- ‘ प्रार्थना पुरुष ‘ गांधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व की अभिव्यंजक काव्यात्मक रचना है।अत्यन्त सरल भाषा में इस रचना को संवारा गया है।कवि ने गांधी जी को सांस्कृतिक पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करके उनकी वंदना की है:-

वह भारत था या गांधी था/या भारत गांधी बन आया,

कितना विशिष्ट वह साधारण/साधारण गांधी बन आया।(समिधा – २, पृष्ठ ४५६)

गांधी जी के आजीवन हिंसा का विरोध एवं सत्य की प्रतिष्ठा की।वह सारे संसार को एक परिवार बनाने की उदात्त कामना करते हैं:-

परम पुरुष वह लौट गया/पावन चरित्र का दे चंदन

विश्व एक परिवार बने/मै चला,सुखी हो सारे जन।(समिधा – २, पृष्ठ ४७३)

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि श्री नरेश मेहता भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा करने वाले उन महान् कवियों में से है जिनको थोड़े में समझना सम्भव नहीं हो पाता। पौराणिक प्रतीकों को नए संदर्भ में लेकर आधुनिक बोध की जमीं पर का खड़ा किया । संस्कृति एवम् सांस्कृतिक मूल्यों को कवि ने अपने काव्य में जगह – जगह पर प्रयुक्त किया है।कहा जा सकता है कि नरेश का काव्य भारतीय सरजमीं पर पनपा है जहां संस्कृति के अनेक फूल खुशबू फैलाकर सबको सुवासित कर रहे हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

१ मानकर हिंदी कोश,(स्म) रामचन्द्र वर्मा, खण्ड -५ (प्रयाग: हिंदी साहित्य सममेलन् १९६६), पृष्ठ २४३
२ रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय (इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, सन् १९७७), पृष्ठ ६५३
३ देवराज, संस्कृति (टिप्पणी),(साम्) धीरेन्द्र वर्मा,हिंदी साहित्य कोश,भाग – १, पृष्ठ ८६८
४ कलानाथ शास्त्री, भारतीय संस्कृति: आधार ओर परिवेश, श्याम प्रकाशन, जयपुर, सन् १९८८, पृष्ठ २
५ हजारी प्रसाद द्विवेदी , अशोक के फूल (इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन,१९९९), पृष्ठ ६८
६ रामकमल राय, नरेश मेहता,कविता की ऊर्ध्वयात्रा (इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन,१९८२), पृष्ठ ४४
७ मीरा श्रीवास्तव, आधुनिकता से आगे:नरेश मेहता (इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन,१९८९), पृष्ठ ३२
८ महावीर सिंह चौहान,नई कविता की प्रबंध चेतना(महेसाना:गिरनार प्रकाशन,१९८१), पृष्ठ ८१
९ प्रेमचंद माहेश्वरी,हिंदी राम काव्य का स्वरूप ओर विकास (दिल्ली:, वाणी प्रकाशन,१९८३), पृष्ठ २९१
१० प्रभाकर शर्मा, नरेश मेहता का काव्य विमर्श और मूल्यांकन (जयपुर: पंचशील प्रकाशन,१९८०), पृष्ठ १३५